International Journal of Technology and Applied Science (IJTAS)

E-ISSN: 2230-9004 ● Website: www.ijtas.com ● Email: editor@ijtas.com

प्रतीक का स्वरूप व विश्लेषण

डॉ. विजय लक्ष्मी शर्मा

सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, गव्हर्नमेंट कॉलेज, धौलपुर (राजस्थान)

प्रतीक का अर्थ व परिभाषा- 'प्रकृष्ट तीकने इति प्रतीकम्' अर्थात् अर्थ ज्ञान या अर्थ-प्राप्ति कराने वाले शब्दों को प्रतीक की संज्ञा दी जा सकती है। हिन्दी का 'प्रतीक' शब्द अंग्रेजी 'सिम्बल' का समानार्थक है। व्यवहार में प्रतीक अपनी विशेष लाक्षणिकता के कारण प्रकृष्ट अर्थ की व्यंजना करता है। कविता में इसका प्रयोग उपमान रूप में होता है, किन्तु इसका प्रसार भाषा, साहित्य, कला, धर्म, दर्शन व जीवन तक है।

अंग्रेजी 'सिम्बल' के कोशगत तीन अर्थ है-पहला वह चिन्ह जो किसी वस्तु की व्यंजना करता है; दूसरा स्वेच्छा से प्रयुक्त या परंपरागत संकेत और तीसरा जो किसी अन्य वस्तु का प्रतिनिधि होता है।'
अर्थात् सिम्बल स्वेच्छा से प्रयुक्त या परंपरागत संकेत है, जो किसी अन्य वस्तु के लिए प्रयुक्त होता है। यह किसी विचार या गुण का अपने सम्बंध सूत्रों के कारण प्रतिविधान, द्वष्टान्तीकरण या स्मरण कराने वाली वस्तु है। संस्कृत तथा मलयालम के कोशों में 'प्रतीक' प्रतिबिम्ब के अर्थ में लिया गया है।

यह वह दृश्य वस्तु है, जो मस्तिष्क के सम्मुख किसी अप्रस्तुत की सादृश्यता को अपने सम्बंध-सूत्रों द्वारा प्रस्तुत करती है। दांते ने प्रतीक को समझाने का प्रयास किया है। उसने कठिन एवं अगम्य संकल्प को मूर्त एवं चित्रात्मक अभिव्यक्ति देन के उपकरण के रूप में प्रतीक को देखा है। प्रतीक निश्चय ही एक चित्रण कला है, जिसे रूप देने वाला चाहे भगवान हो, चित्रकार हो, मूर्तिकार हो या कवि।

श्रीराम वर्मा ने 'प्रामाणिक हिन्दी (शब्द) कोश' में प्रतीक शब्द के ये अर्थ दिये है- (1) चिन्ह, लक्षण, निशान (2) मुख, मुंह, (3) आकृति या रूप या सूरत, (4) किसी के स्थान पर या बदले में रखी हुई या काम आने वाली वस्तु, (5) प्रतिभा, मूर्ति (6) वह जो किसी समष्टि के प्रतिनिधि के रूप में और उसकी सब बातों का सूचक या प्रतिनिधि हो (सिम्बल)।

प्रतीक का प्रयोग भाव स्पष्टता के लिए किया जाता है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में प्रतीक को शिल्प के अन्तर्गत स्थान प्राप्त है। वास्तव में प्रतीक ऐसी वस्तुओं का अभिव्यंजन करता है, जिससे हम उसके परे दूसरी वस्तु का अनुभव कर लेते है। बेवेस्टर के अनुसार- "प्रतीक अपने सम्पर्क सन्दर्भ, वस्तु की ओर संकेत करता है। प्रतीक द्वारा ऐसी वस्तुओं का बोध होता है जो प्रस्तुत नहीं होती है। वे दृश्य वस्तुएं जो मूल विषय का प्रतिविधान साद्वश्य, समानता और साहचर्य के आधार पर करती है, प्रतीक कहलाती है।"

एक साहित्यकार प्रस्तुत वस्तु के वर्णन हेतु अनेक प्रकार की अनुभूतियों से आर्पूण होता है। उन सभी अनुभूतियों को सम्पूर्ण रूपेण स्पष्ट रूप से वह प्रकट नहीं कर पाता। इसलिए वह अप्रस्तुत उपकरण का प्रयोग करता है। इसे ही प्रतीक कहते है। वास्तव में सीधे-साधे अभिधा में न बंधकर एक ज्ञान के उपकरण के रूप में प्रकट होने वाला ही प्रतीक कहलाता है।

प्रतीक के द्वारा अनुभवों को एकत्रित करना और उसे सम्प्रेषित करना सम्भव होता है। प्रतीकों के प्रयोग से भाषा में अभिव्यक्ति-मनोहरता एवं सशक्तता आ जाती है। साहित्यकार स्वयं के भावों को अर्थ की गहराई तक पहुँचाने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करता है। इस प्रकार भाषा में अर्थाभिव्यंजन, मनोरमता, सरसता, सशक्त आदि अनेक प्रकार के गुण प्रतीकों के प्रयोग से प्राप्त होते है। अर्थो की यह विविधता ही 'प्रतीक' शब्द की व्यापकता सिद्ध करती है। अतः प्रतीक सम्बन्धी निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते है-

1. प्रतीक किसी अगोचर या अप्रस्तुत विषय का प्रतिविधान करता है।
2. यह प्रतिविधान साद्वश्य या साहचर्य के कारण किया जाता है।

3. प्रतीक अदृश्यात्मक होता है।
4. यह परम्परागत या नवीन हो सकता है।
5.

प्रतीक उपमेय के स्थान पर प्रयुक्त होने वाला उपमान शब्द है, जो काव्यशास्त्रीय भाषा में रूपकातिशयोक्ति कहलाता है। साहित्य में इसका प्रयोग अमूर्त मानसिक या फिर अगम अगोचर अनुभूतिगम्य आलौकिक सत्ता को व्यंजित करने के लिए होता है। अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में जब सामान्य भाषा असमर्थ हो जाती है, तब कवि प्रतीकात्मक भाषा का सहारा लेता है। प्रत्येक कलाकृति सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति है, जो प्रतीकात्मक होती है।

यह प्रतीक जितना स्वाभाविक और प्रेषणीय हो, रूप उतना ही स्पष्ट और सुन्दर होगा। इसलिए सफल प्रतीक-योजना वही होती है, जहाँ उसके दृश्यमान रूप को कल्पित करने में कठिनाई न हो। स्पष्ट है कि प्रतीक का लक्ष्य भाव की सहज, स्वाभाविक सुन्दर एवं सरस अभिव्यक्ति है।

प्रतीकवाद का अविर्भाव और विकास-जिस प्रकार भारत के कुछ काव्य शास्त्रियों ने अलंकार, वक्रोति और ध्वनि आदि में से प्रत्येक को काव्यगत सौन्दर्य का मूलाधार सिद्ध करने का प्रयत्न किया, वैसे ही यूरोप के कुछ विद्वानों ने प्रतीकों के प्रयोग काव्य-सौन्दर्य को समस्त महत्व प्रदान किया। फ्रांस के प्रसिद्ध कवि 'जीन मोर आज' ने अपनी पत्रिका 'फिगारो' के 18 सितम्बर सन् 1886 के अंक में सर्वप्रथम 'प्रतीकवाद' के विरोध में हुई। प्राकृतवाद में आध्यात्मक के स्थान पर भौतिकता की, आदर्श के स्थान पर यथार्थ की, सौन्दर्य के स्थान पर कुरूप की और अलंकारिकता के स्थान पर स्वाभाविकता की प्रतिष्ठा की गई। प्रकृतवादी लेखक अपनी समस्त अनुभूतियों तथा मान्यताओं को बिना किसी बन्धन तथा सामाजिक नियमों को मानते हुये प्रकृत रूप में अभिव्यक्त करने लगे। इस प्रकार प्राकृतवाद के विरोध मे प्रतीकवादियों ने काव्य में आध्यात्मिकता, आलौकिकता, अलंकारिकता एवं अस्पष्ट अभिव्यक्ति पर बल दिया।

कवि 'जीन मोरे' की प्रतीकवाद सम्बंधी घोषणा के कुछ समय पश्चात् इसका प्रचार विभिन्न क्षेत्रों में हो गया। 'श्री अलबर्ट ओरिएंट' महोदय ने सन् 1891 में एक लेख प्रकाशित करके प्रतीकवाद की व्याख्या अधिक स्पष्ट रूप में की, उन्होंने बताया कि प्रतीकवादी दृष्टिकोण में प्रत्येक कलाकृति में ये विशेषताएँ होनी चाहिए-

1. वह भावात्मक हो, क्योकि कला का लक्ष्य भावों की व्यंजना करना है।
2. भावों को स्थूल रूप और आकार प्रदान करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग आवश्यक है।
3. वह संश्लेषणात्मक हो।
4. विषयीपरक हो अर्थात् उसमें कवि के व्यक्तित्व की प्रमुखता हो।

काव्य के अतिरिक्त चित्राकला के क्षेत्र में भी प्रतीकवाद की प्रतिष्ठा हुई। प्रतीकवादी आन्दोलन के प्रसार में रहस्यवादी विचारधारा ने भी पर्याप्त योग दिया। प्रतीकवादी आन्दोलन से यूरोप के अनेक प्रमुख कवि, लेखक एवं आलोचक प्रभावित हुए जिनमें कीट्स, जेम्सज्वायस, गर्टून स्टीन, बेलेरी रिक्ले, हिटमैम, अलैक्जेण्डर ब्लॉल, सैण्डवर्ग आदि का नाम लिया जाता है।

प्रतीकवादी विचारधारा - 'श्री राजनारायण बिसारिया' ने अपने एक लेखन प्रतीकवाद की स्थापना' (आलोचना अंक 9) में प्रतीकवादी विचारधारा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है- "कुछ प्रतीकवादियों के अनुसार ऐसे सभी भाव जो कि हमारे हृदय में उठते है, प्रत्येक अनुभव जो कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के माध्यम से हम मिलते है, और प्रत्येक क्षण, जोकि हमारी मानस-चेतना को एक विशिष्ट तरंग में झंकृत कर जाते हैं, एक-दूसरे से सटे रहकर भी विगल, इतने अछूते, इतन गतिशील और इतने अग्राह होते है कि न तो हमारी अभिव्यक्ति उन्हें यथावत पकड़ पाती है और न स्मरण शक्ति ही उनके वास्तविक रूप को सहेजकर रख पाती है। प्रत्येक कलाकार अपने इन अनुभवों को अपने दृष्टिकोण की विशिष्टता से देखता और अपने रूझान के अनुरूप अभिव्यक्ति में रंग प्रकाश की नियोजना करता है।"

प्रतीक-विधान का आधार साम्य है, जो चार प्रकार का होता है-सादृश्य, साधर्म्य, शाब्दिक साम्य तथा प्रभाव साम्य। छायावाद कवियों ने प्रभाव-साम्य के आधार पर बिलकुल नवीन सार्थक एवं सांकेतिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। उनके चित्रा अतिसूक्ष्म एवं व्यंजक है। 'अण्डरहिल' के अनुसार जिस प्रतीक में जितनी मात्रा में यह व्यंजक शक्ति है वह पाठक में उतनी ही अधिक संवेदना उत्पन्न कर सकेगा तथा अधिक अर्थ भी प्रदान करेगा।

प्रतीकों के वर्गीकरण के दो आधार हो सकते है अर्थगत एवं स्रोतगत। अर्थ के आधार पर संकेतात्मक, अभिव्यंजनात्मक एवं आरोपमूलक ये तीन उपभेद हो सकते है--परम्परागत प्रतीक, वैयक्तिक प्रतीक और प्राकृतिक प्रतीक। परम्परागत प्रतीक साहित्य में चिरकाल से प्रयुक्त होने वाले प्रतीक है। जो अपने प्रचार-प्रसार के कारण एक ही अर्थ में अपनाये जाते रहे हैं। चिरकालिक प्रयोग के कारण ये अपना वैशिष्ट्य खो बैठे हैं। वैयक्तिक प्रतीकों से तात्पर्य विशिष्ट कवियों के उन नूतन प्रतीकों से है, जिनको कवि अपने निजी व्यक्तित्व एवं संस्कार के आधार पर चुनते है। कवियों की मौलिकता के द्योतक ये प्रतीक औचित्यपूर्ण चयन से विशिष्ट एवं प्रभावकारी होते है। प्राकृतिक प्रतीक प्रकृति से गृहीत होते हैं।

प्रतीकवादी काव्य का विषय सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने के कारण और उनकी शैली-प्रतीकात्मकता की अस्वाभाविकता, कृतिमता एवं नवीनता के कारण उसमें अस्वभाविकता और अस्पष्टता का आना स्वाभिक था, किन्तु इस बाद के समर्थकों ने अस्पष्टता को काव्य का एक गुण माना है। इस सम्बंध में 'मला में' का कथन है- "कविता का आनंद तभी मिलता है जबकि हमें संतोष हो कि हम उसकी वस्तु का थोड़ा-थोड़ा करके अनुमान लगा रहे है, परन्तु स्पष्ट रूप में वर्णन कर देने से कविता का तीन चौथाई आनन्द नष्ट हो जाता है। हमारी मानस चेतना को वही प्रिय है, जो संकेत करता हो सचेत करता है। "

सम्भवः प्रतिकवादी अभिधा के स्थान पर लक्षणा और व्यजंना के महत्व की प्रतिष्ठा करना चाहिते थे, किन्तु वे अपने लक्ष्य में भटक गए। लाक्षणिकता और व्यंग्यात्मकता के स्थान पर उन्होंने दुर्बोधता एवं अस्पष्टता को अपना लिया।

भारतीय काव्य में प्रतीकात्मकता भारतीय काव्य में प्रतीकों का प्रयोग चिरकाल से होता रहा है, साहित्य में अमूर्त भावनाओं को प्रतीकों में अभिव्यक्ति करने की प्रणाली अतिप्राचीन है। सुख के लिए 'फल' दुःख के लिए 'शूल', आनन्द के लिए 'दिन', विषाद के लिए 'रात', यौवन के लिए 'बसन्त' वार्द्धक्य के लिए 'पतझड़' आदि कितने ही प्रतीक परम्परा से प्रयुक्त होते आ रहे है। कुछ धार्मिक संप्रदायों न दुरूह आध्यात्मिक विचारों को सहज संवेध बनाने के लिए धार्मिक प्रतीकों को अपनाया है। नाथ-सम्प्रदाय में प्रयुक्त तरूवर (काया) पल्लव (प्रकृति), गाय (आत्मा), सिंह (विकारग्रस्त मन) आदि ऐसे ही प्रतीक है।

अनन्त, अव्यक्त ईश्वर बुद्धि ग्राह्य नहीं है, केवल ज्ञान चक्षु से उसकी अनुभूति की जा सकती है। अतः आध्यात्मिक अनुभूति एवं दार्शनिक विचारों को प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की भारतीय परम्परा प्राचीन है। 'मुण्डकोपनिषद्' में जीवात्मा-परमात्मा के स्वभावों की, प्रतीकों के द्वारा सुन्दर व्याख्या की गयी है-
"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वादत्य
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति। "
यहाँ 'द्वासुपर्णा' जीवात्मा और परमात्मा का प्रतीक है। वृक्ष (वृश्च्यते विनश्यति अर्थात् नाशवान) संसार का तथा 'फल' कर्मफल का प्रतीक है। कर्मफल का भोक्ता पक्षी जीवात्मा तथा दृष्टा मात्र रहने वाला पक्षी परमात्मा है। एक अन्य स्थान पर बैल का प्रतीकात्मक वर्णन द्रष्टव्य है-
"चत्वारि श्रृंगास्त्रायो अस्य पादा,
द्वे शीशें सप्त हस्ताभो अस्य।
त्रिद्धा ब्रद्धौ वृषभो शेर वीति,
महो देवा मर्त्या अविवेश।"

इस उद्धवरण में त्रिद्धाबद्ध वृषभ का वर्णन है, जिसके दो सिर, चार सीग, तीन पैर और सात हाथ की कल्पना की गयी है। विद्वानों के अनुसार 'वृषभ' अध्यात्मज्ञान 'दो सिर' जीवन और मोक्ष, 'चार-सीग', साधन चतुष्टय, 'त्रिधावद्ध'- सत्-चित्त-आनन्द, तीन पैर-श्रवण मनन और निदिध्यासन तथा 'सप्त हस्त' अविद्या, आवरण, विक्षेप, ज्ञान, अपरोक्ष ज्ञान, शोकापगम और तृप्ति नामक विदानुभूति की सात अवस्थाओं के प्रतीक है।

रामायण और महाभारत के पात्रा एवं घटनाएँ प्रतीक रूप में प्रस्तुत है। रामायण के 'असुर' निद्य कार्यों में निरत मनुष्य, 'वानर' कंदराओं में रहने वाले मनुष्य, 'अहिल्या' बंजर भूमि, 'सीता'- कृषिफल, 'राम-रावण युद्ध'-देव-दानव संघर्ष और 'रावण पर राम की विजय असत् पर सत् की प्रतिष्ठा के प्रतीक है। करूक्षेत्र का कौरव-पांडव युद्ध मानव-हृदय के असत्-सत् के संघर्ष को व्यक्त करता है। संस्कृत और प्राकृत के कवियों ने भी प्रतीकों का प्रयोग किया है।

महाकवि कालिदास ने तरंगों से उद्वेलित सरिताओं को मद-विह्वल कामिनियों के प्रतीकार्थ में, पर्वतों को पृथ्वी रूपी नारी के उन्नत स्तनों के रूप में, लता और विपट के मिलन को प्रेयसी-प्रिय के मिलन के सदृश चित्रित किया है। दूसरी ओर प्राकृत और अपंभ्रश के जैन एवं बौद्ध कवियों ने प्रतीकों के माध्यम से ही उपदेश देने की शैली का आविष्कार किया। यही शैली सिद्ध और नाथपंथी कवियों में होती हुई हिन्दी के सन्त कवियों तक पहुँची। महात्मा कबीर ने यौगिक शब्दों एवं नाथ-पंथी साधना पद्धतियों को सहज भक्तिभाव के विभिन्न अंगों के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया है। कबीर को उलटबाँसियों और सूर के कूटपदों में प्रतीकात्मकता का ही विशेष ढंग से प्रयोग है।

उधर प्रेमाख्यान कवियों ने तो पूरे के पूरे काव्य प्रतीकों के आधार पर निर्मित किए। पद्मावत में रत्नसेन को मन का प्रतीक, तोता गुरू का व पद्मिनी बुद्धि की प्रतीक है-इस बात का उल्लेख कवि ने स्पष्ट रूप में किया है। मध्यकालीन श्रृंगारी कवियों ने यत्रा-तत्रा अन्योक्ति के रूप में प्रतीकों की आयोजना की है।

आधुनिक छायावादी व प्रयोगवादी काव्य में तो इसका प्रयोग इतना अधिक हुआ है कि उन्हें 'प्रतीकवाद' तक की संज्ञा देने का प्रयत्न किया गया है यहाँ छायावादी कवियों की प्रतीक योजना के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-
"लतिका घूंघट से चितवन की
वह कुसुम दुग्ध सी मधुधारा,
प्लावित करती मन अजिर रही,
था तुच्छ विश्व वैभव सारा।"
छायावाद ने ऐसे अनेकानेक प्रतीकों की सृष्टि की है, जो सूक्ष्म भावों, रूप-विशेषों एवं व्यापारों को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ होते है तथा जिनके द्वारा कला में अपूर्व चमत्कार भी आ जाता है। महादेवी वर्मा ने भी ऐसे अनेक प्रतीकों का प्रयोग करके अपनी काव्य कला को सुसज्जित किया है। उदाहरण के लिए 'टूट गाय वह दर्पण निर्मम' गीत को ले सकते है, जिसमें 'दर्पण' को माया का प्रतीक बनाकर बड़ी ही रमणीय कल्पना की गई है-
"टूट गया वह दर्पण निर्मम ।
किसमें देख सँवारू कुन्तल, अंग राग फलकों का मल-मल, स्वप्नों से आजुँ पलकें चल, किस पर रीझुँ किससे रूढूँ भर लूँ किस छवि से अंतरतम ! टूट गया.....।"
आचार्य शुक्ल ने भी छायावादी काव्य की सर्वप्रमुख विशेषता प्रतीकात्मकता को ही मानते हुए लिखी है- "हिन्दी में छायावाद शब्द का जो व्यापक अर्थ रहस्यवादी रचनाओं के अतिरिक्त और प्रकार की रचनाओं के संबंध में भी ग्रहण हुआ है, वह इसी प्रतीक शैली के अर्थ में। छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाला छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।"

श्री शिवदान सिंह चौहान ने हिन्दी के प्रयोगवादियों को छद्मवेशी प्रतीकवादी बताया। इसमें काई संदेह नहीं कि हिन्दी प्रयोगवादी कवियों ने प्रतीकों के द्वारा अपनी दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति का प्रयास किया है, किन्तु फिर भी उसमें पाश्चात्य प्रतीकवाद की मूल भावना नहीं मिलती, जैसा की स्वयं अज्ञेय ने स्वीकार किया है-आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएँ सब दमित और कुंठित है। उसकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रान्त है। उसके उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते है।

प्रयोगवादियों की कविता में यौन-प्रतीकों की प्रचुरता है। पाश्चात्य प्रतीकवादियों की सी रहस्यवृत्ति धार्मिकता, संगीतात्मकता, रोमांच, आलौकिक सौन्दर्य-सृष्टि का आग्रह इसमें नहीं मिला। प्रतीकवादियों ने बुद्धि का तिरस्कार किया था, जबकि इन्होंन इलियट के प्रभाव से बौद्धिकता को काव्य का प्रमुख गुण स्वीकार किया है। वस्तुतः प्रतीकात्मकता और प्रतीकवाद में जो अन्तर है। वही प्रयोगवाद और प्रतीकवाद में है। श्री राजनारायण के शब्दों में-"प्रतीकवादी कवियों और अज्ञेय में यदि कोई सम्बन्ध है तो यह है दोनों ने नये प्रतीकों की योजना पर बल दिया है, नये उपमान ढूढ़ने की बात कही है। परन्तु फ्रेंच कवियों के प्रतीक सम्बंधी सिद्धान्त रहस्यो, अन्तःविरोधी और अस्पष्टताओं से भरे थे, अज्ञेय में यह बात नहीं है। "

पिछले कुछ वर्षों से हिन्दी कविता में प्रतीकात्मकता की प्रवृत्ति और तेजी से बढ़ रही है। विशेषतः नई कविता के क्षेत्रा में अनेक व्यक्तियों ने फ्रायडियन प्रतीकों का प्रयोग बिना सोचे-समझे किया है, जिससे उनकी रचनाएँ अस्पष्ट दुरूह एवं जटिल बन गई है।

"वस्तुतः इन कविताओं में प्रतीकात्मक शब्द उस बन्द ताले के समान है, जिसकी कुंजी कवि की जेब में रहती है, कवि महोदय जब कुंजी निकाल कर दे देते हैं तो ताला खुल जाता है, वरना अर्थ का इन्तजार कीजिए। "'
हमारे विचार से प्रतीकों का ऐसा प्रयोग जहाँ वह प्रेषणीयता के साधन के स्थान पर बाधक जाता है, उचित नहीं कहा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत हिन्दी कोश – आप्टे
2. शब्द तारावली - श्री कंठेश्वरम्
3. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका-भाग-21
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द शुक्ल
5. प्रतीकवाद की स्थापना - श्री राजनारायण बिसारिया
6. हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद - गणपति-चन्द्र गुप्त
7. मुण्डकोपनिषद् - 3.1.1
8. कामायनी - जयशंकर प्रसाद (काम सर्ग)
9. टूट गया वह दर्पण निर्मम - महादेवी वर्मा
10. प्रतीकवाद की स्थापना - आलोचना अंक-१
11. डान्टे अंडर वर्ल्ड - बर्नाड स्टम्ब्लेर
12. जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला - - डा0 रामेश्वरला खण्डेलव